

आचार्य नित्याजन्त शर्मा
और रामकथा कल्यलना



सम्पादक

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

रामकथा - कल्पलता में अभिव्यक्त दार्शनिक विन्दु

डा. मुरलीमनोहर पाठक

'रामकथा-कल्पलता' महाकवि नित्यानन्द शारदी 'दार्शनिक' द्वारा प्रणीत हिन्दुओं की श्रीरामकथापर एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। संस्कृत का परिनिष्ठित विद्वान् होने के साथ ही कवि का राष्ट्रभाषा हिन्दी पर भी असाधारण अधिकार है। यहाँ कारण है कि उन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं के माध्यम से उत्कृष्ट साहित्य-सर्जन द्वारा समाज को उपकृत किया। प्रस्तुत महाकाव्य अनेक कारणों से महनीय है। किसी भी रचना के मूल में दार्शनिक पृष्ठभूमि का होना महत्व है, क्योंकि कवि द्वारा अपने चिन्तन को ही उपलब्ध करने में काव्य का स्वल्प निर्मित हो जाता है। कवि दार्शनिक की प्रवृत्ति, वेदान्त-विशेषरूप से भगवद्बिषयक सन्दर्भों को चिन्तने में ही रहती है। वे स्वयं कहते हैं- 'सांसारिक प्रवृत्तियों से अन्तकाश पाकर कुछ न कुछ चिन्तने का व्यसन भी तो लगा हुआ था। वह भी भगवत्पूजा से प्रायः भगवद्बिषयक सन्दर्भ लिखने ही का रहा।' कवि किसी चाद-विकाद में पड़े बिना केवल श्रीरामकथानुकीर्तन में ही लगे रहना चाहता है-

मैं तो चाद-विषाद-नाशन मिटा स्वीयानन्तरकाश में ।
सौताराप-पुष्पाजुवार रचता पायादरी ललास में ॥'

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में श्रीरामभक्ति को ही प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि भक्ति स्वयं दर्शनकाय है, तथापि भारतीय परम्परा में उपनिषद् होने के कारण यहाँ भारतीय दर्शन के विभिन्न प्रस्तानों के विविध विन्दु भी परिलक्षित होते हैं। इन विन्दुओं का विश्लेषण करना, प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है।

कवि ने प्रकृत महाकाव्य को चौबीस प्रदानों में विभक्त किया है। यह विभाजन भी आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। इसके आधार के रूप में कवि ने 'मङ्गलदोहावर्णनों' में -

विषयाणि देव सखिवदुखितानि पराधुन ।
एव परं वन आसुध ॥

इस वैदिक मन्त्र को उपलब्ध कर इसके चौबीस अधस्त में से प्रत्येक से आरम्भ कर चौबीस दोहे लिखे हैं तथा उन्हीं दोहों से प्रदानों का समापन किया है। यहाँ कुछ दोहों पर विचार करना अभिहित है। इस दृष्टि से प्रथमतः अधोलिखित दोहा द्रष्टव्य है -

तर्क नहीं कुछ काम दे, शास्त्रों का न सुलास ।
अन्तर्धामिन् ! निज पता दे स्तानुभव-प्रभाव ॥'

प्रस्तुत दोहे के मूल को कठोरपनिषद् के इस मन्त्र में देना जा सकता है -

मयाभास्या प्रवचनेन त्वयो न मेधया न बहूना भुवेन ।
मयोवैष भुवुते तेन त्वयस्त्ववैष आत्मा विभुषुते त्वं स्वाम ॥'

अर्थात्, यह आत्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि (तर्क) से और न बहूत अधिक शक्त्यज्ञान से ही

प्राप्त किया जा सकता है। यह जिसे चयन कर लेता है उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है तथा इसके लिए यह अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देना है।

कवि सांसारिक दुःख एवं सुख को महत्त्व नहीं देता है। वह दोनों को समरूप मानने का पक्षर है। ऐसा होने पर ही परमात्म-साक्षात्कार सम्भव है। वह कहता है -

दुख को दुख मत मानिए, फिर सुख को सुख भी न ।
जान पड़े मे जानकी-पति तब निकटसाहीन ॥'

यह दोहा अपने अन्तर भारतीय दार्शनिक परम्परा के उस चोत्र को संशोधित है, जिसके अनुसार सुख और दुःख में अन्तर की स्थिति दृष्टिगत होती है तथा जो मोक्ष के 'सुखदुःखे समे कृत्वा' की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार 'सर्वं हेतुत्वं चक्षुः' से अनुप्राणित होकर कवि कहता है -

रिक्त सभी संसार है रघुवर से अतिरिक्त ।
यदि तन्मय ही सभय नें, सबन्धों, सभी अरिक्त ॥'

रामकथा-कल्पलता में यत्र-तत्र साक्ष्यदर्शन की शक्तक रिलीफ देती है। सांख्य में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक - इन तीनों प्रकार के दुःखों के मूलकारण को जानने और उसका निवारण करने की चेष्टा की गई है। कवि ने भी दुःखों के निदान को कठिन माना है तथा एक बार निदान हो जाने पर अर्थात् उनका कारण जान लेने पर उनकी निवृत्ति के उपाय को सुखों का द्वार माना है। यहाँ वह वेदान्त के निकट चला जाता है -

निदान हो दुर्लभ है दुःखों का, उपाय है द्वार पुनः सुखों का ॥'

सांख्य दर्शन में 'प्रकृति' को 'अव्यक्त' कहा जाता है, वहीं मूल प्रकृति है-कारण रूप है। महत् अहङ्कार है और पंचतन्मात्रों को प्रकृति-विकृति अर्थात् कारण और कार्य दोनों माना गया है। अहङ्कार से आकाश इत्यादि पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसके सत्त्वाशों से ऋष इत्यादि पञ्च शानेन्द्रिया उत्पन्न होती हैं तथा राजसाशों से कर्मान्द्रिया। सत्त्वाशों की संघटना से अन्तःकरण उत्पन्न होता है तथा राजसाशों की संघटना से प्राण ॥ सांख्य की इस पूर्ण वैदन्त्याभिनत दृष्टिप्रक्रिया को कवि ने निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है -

दृष्टि-प्रणामावस्था मया अव्यक्त शक्ति अवसता ।
भूतप्रकृति एते ही कहते हैं सांख्य के आवा ॥
इसके समानन्तर तो महत्वाहिक प्रकृति-विकृति है आवा ।
प्रभु का दृष्टि-विषय जो मान, महत्तत्त्व कहलाता ॥

'मं बहू वर्तु' वाली प्रभु-मान अहंकार नामक कहलाता ।
इसके आकाशाहिक पञ्च-भूतपूत हो आवा ॥
इसके सत्त्वाशों से श्री आहिक आन-इन्द्रिया हृद् पशो ।
राजस शशों से फिर वायाहिक कर्म-इन्द्रिया हृद् पशो ॥

सत्त्वाशों का संघट, अन्तःकरण-प्रकाश उपजाता ।
जो राजसाश-संघट, उससे तो 'प्राण' बन आता ॥
शानेन्द्रिय, कर्मान्द्रिय, प्राण तथा पंच बुद्धि भन मिलते ।
सत्त्वाश-तत्त्व सुषुप्तित सूक्ष्म-अतीर-स्वरूप में मिलते ॥'

कवि ने सूक्ष्म-शरीर की उत्पत्ति के बाद सूक्ष्म-शरीर की उत्पत्ति एवं पञ्च कोशों की उत्पत्ति का भी सम्पत्क उपपादन किया है -

पञ्चकृत पूर्वों वे स्थूलधारक व 'अन्तर्भाव कोष' ।
विशेषी पिण्ड-ब्रह्माण्डवन्त आनरी सख्योप ॥

भन, कर्मन्दिप मिश्रित 'मनोभाव कोष' पूर्वों ने समस्त कला,
पंच प्राण वी कर्मन्दिप वे मिश्रित 'प्राणभाव कोष' रत्न ।
निश्चय-मूर्ति व मानेन्द्रिय मिलि सु-विमानभाव कोष बला ।
एवं कारण-शरीर सम्यो कि 'आनन्दभाव कोष' भरा ॥

यही गृहि की प्रक्रिया सब समझे संक्षिप्त ।
यह अनिरव है, निरव है बाला एक अनिरव ॥१०॥

योग स्थान की दृष्टि से विचार करने पर भी कवि की दृष्टि का सुस्पष्ट भान होता है ।
आद्याङ्गयोग की साधना द्वारा समाधि की पूर्णता होने पर जीव सम्पूर्ण प्राणों से मुक्त होकर परम्पद
अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । द्रष्टा जीव का अपने स्वरूप में प्रतिबिम्ब हो जाना ही तो
केवल है ।^{१०} इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है -

मा योनाभ्यास रवे नित्य समाधिरस्य पूर्ण होने से ।
यह जीव उसी पर को पाता सादा प्रपञ्च सोने से ॥११॥

कलाकाव्य में एक स्थल पर नैसर्गिकों की अनुमान-प्रक्रिया की ओर भी संकेत किया गया है
। इसके अनुसार अनुमान लिङ्ग-लिङ्गी के जानपूर्वक हो होता है ।^{११} प्रसङ्ग द्रष्टव्य है -
ज्यों ही बराब कुछ दूर गई कि दीक्षा -
राजसि ने प्रथम वर्क यही निकाला,
है प्रबलजन्तवन का दरना उजाला ॥

ज्यों-ज्यों कर्मात् यह समीप लया कि जाने,
गाना-विधान अनुष्ठान बने लगाने ।

ज्यों ही क्याकृति नवी, भन में विश्वास ।
भया सूर्य है, पर न लक्षण का कहरा ।

जाना सु-विह लखते यह है तपस्वी,
मायेय क्या फिर धमार रहे मनस्वी ?
ज्यों ही तुल्य भूष ने स्वमिदा उचारी,
वे हैं नरेन्द्र भूपुत्रन्दन फोपारी ॥१२॥

प्रस्तुत महाकाव्य में वेदान्त दर्शन का प्रभाव अनेकन दृष्टिगत होता है । ब्रह्म की सत्यता एवं
जगत् के मिथ्यात्व का निरूपण करते हुए कवि कहता है -
ब्रह्माण्ड में निरक्षिण एक परब्रह्म से प्रपक्व क्या है ?
जो कुछ दीक्ष रखा है यह वेन, निदान मिथ्या है ॥१३॥

कवि के अनुसार परमात्मा ही जब अविद्या अथवा अहङ्कार के स्वरूप रूप माया में लीन हो
जाता है, तो वह उसी प्रकार जीवशब्दवाच्य बन जाता है, जैसे कोई ब्रह्मचारी किसी स्त्री में आगत
होते ही गृहस्थ बन जाता है । परमाण्वरूप प्रकृति जीव से ही विकृत होकर व्यञ्जन नैपरत्य में 'जीव'
का 'जीव' हो जाता है । यही ब्रह्म एवं जीव का अन्तर भर्म है । यही कवि द्वारा प्रयुक्त व्यञ्जन शब्द
सिद्ध है । इसके दो अर्थ हैं- प्रथम, स्वर रक्षित वर्ण और दूसरा किगत अञ्जन अर्थात् मलरहित, निर्मल ।
निर्मल होता हुआ भी वह आत्मा माया के कारण वैरोपाधियोगात् मलिन हो जाता है । इस प्रकार

मलिन होने के कारण उसे कर्मकल भोगने पड़ते हैं । अन्त में माया-मूक्त होने के बाद विमुक्त
होकर अपने मूल परमात्मतन्त्र में मिल जाता है, जिस प्रकार मलिन वस्त्र धुलने के बाद पुनः
ने सांस्कृतिक रूप में सुशोभित होने लगता है । कवि के शब्द इस प्रकार हैं -

अब कि अविद्या बलव बहैमति-स्पृष्टि माया में ।
रव ही, जीव कहता, ज्यों ब्रह्मवत् गृहस्थ बला में ॥
अन्वक्त जीव से मन, अह से अहङ्कार, इसी काम से ।
होती विकृत प्रकृति भी, ज्यों स्त्री अन्तःपुरोदरण से ॥
व्यञ्जन-धिरतीव हुए कि जीव का जीव बन जाता ।
परमात्मा-जीव-अन्तर-भर्म यही भेद सिद्धतावा ॥

जो होता निरव उसे कर्मन फन भोगने पड़ते ।
देह तथा वह परता, तेष तने कर्म भी लड़ते ॥
अब यह विशुद्ध होता, तब वह उस ही स्वरूप में मिलता ।
मलिन हुआ वरशाञ्जन बीसे मुलकर स्वरूप में मिलता ॥१४॥

कवि मुक्ति के लिए, ब्रह्म के निरन्तर चिन्तन पर बल देते हुए तथा सम्पूर्ण बराबर जगत् को
ह्रा मानते हुए उसके साथ तद्रूप व्यवहार करने का आग्रह करता है -
सत्यरूप उस ब्रह्मवत्त्व का चिन्तन करना,
सर्व बराबर दुःख जगत् को ब्रह्म समझना ।
समाप्त-समाप्त कर वैसा ही व्यवहार निगमना,
सर्वोद्यम द्रव जान-मान से पर पर पाया ॥१५॥

कवि ने कहीं-कहीं सन्दर्भ उपासकों के रूप में भी दार्शनिक तर्कों को प्रकट किया है । श्रीराम
ने बाललीला के प्रसङ्ग में एक बार कैशोत्सव के समय आकाश में चन्द्रमा सुशोभित हो रहे थे । राम
पत्नी ही परछाई को पकड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं, किन्तु उन्हें कुछ हाथ नहीं लगा, इस पर वे हैस
बने हैं और कहते हैं कि यदि परमात्मा या ब्रह्म तथा चन्द्र विमुख हो जाए तो छाया अर्थात् परछाई
एवा अविद्या क्या नहीं कर सकती है ? यक्तियां द्रष्टव्य हैं -

वैसी उत्तम देख राम रामने, चन्द्रासु वे छा रहे,
छाया समुल देख वे पकड़ने दीड़े चले आ रहे ।
लीडे तो उसको न पा हैस परे, जोने महत्तया करे ।
जो विशेष-विशेष ही विमुख तो छाया न क्या क्या करे ॥१६॥

निरव कवि ने इन्द्रियसुख की निन्द्या करते हुए विवेकियत्व को महत्त्व दिया है । उनके
अनुसार जो इन्द्रिय सुख का परित्याग कर ब्रह्म का चिन्तन करते रहते हैं, वे ही ब्रह्म पर के अधिकारी
होते हैं तथा जो इन्द्रियों को वृण करने में ही संलग्न रहते हैं अर्थात् विषय-भोग में ही लीन रहते हैं,
वे अधिकतरम 'इन्द्र' की पदवी प्राप्त कर सकते हैं । ब्रह्म का ध्यान करने से माया से मुक्ति मिलती है
और जन्मशः 'अमाय' अर्थात् मायारहित परब्रह्म का क्रम प्राप्त होता है -
जो इन्द्रियार्थ-सुख को ठुकरा बिहारी -
हो ब्रह्म-जीव वा ब्रह्मपरवधिकारी ।
जो इन्द्रियार्थ-सुख ही तक पुष्य होवे,
वे दीर इन्द्र तक ही पर प्राप्त होवे ॥

जो त्याग नारी-सुख दुःखकाय,
हो देखवारी-धर में विहारी।
होता वही बहुरूपविकारी,
माया तबे प्राय अभाव नारी ॥¹⁸

द्वित्रिय-नोतुयों को चित्तकारते हुए कवि पुनः कहता है-

जो है द्वित्रिय-रूप द्रव्य, उनको ही चार चित्तकार है,
जो है मातृति से प्रियेद्विय उनके भेद नामस्वर है ॥¹⁹

द्वित्रिय-पदा से मुक्त होने पर भी मनों से दूर होना मुक्ति के लिए आवश्यक है। कवि ने तीन प्रकार के मनों से रहित होने का उल्लेख किया है-

पुरुषु पथा बहमवभिका, अहं-पूरुषिकोद्वार।
एवं बालो-पुरुषिका मर न मुझे चित्तकार ॥²⁰

आपदा में अहंकार या प्रायम्य प्राप्त करने को 'अहमहमिका' कहते हैं। 'अहं-पूरुषिका' का अर्थ 'एक दूसरे का अगुवा होना' होता है। इसी प्रकार 'बालो पुरुषिका' का अर्थ 'अपने को तथा समझना' होता है।²⁰

भारतीय चिन्तन में मनुष्य के छह आन्तरिक शत्रु बताए गए हैं-काम, क्रोध, मोघ, लोभ, मत्त, मोह और मत्सर इन्हें 'षड्वर्ग' या 'षड्रिपु' के रूप में भी जाना जाता है।²¹ ये मुक्ति के बाधक हैं। योग का आशय लेकर ध्यान के सहारे से इन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ध्यान आत्मबल को बढ़ाता है और आत्मबल द्वारा ही इन छन्दों शत्रुओं का नाश होता है। इसके पश्चात् तत्त्वज्ञान का उदय होता है तथा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मुक्तिरूपा मुक्तता संरक्षित कर लेती है। इस प्रकार का, ध्यान का ऐश्वर्य अर्थात् महात्म्य है। कवि कहता है-

शुद्ध-ध्यान-प्रभाव आत्मबल को ज्ञेयों विना साधवा,
निराध्यास-शुद्ध आत्म-बल की षड्वर्ग को नाशवा।
षड्वर्ग-प्रतिबाधा से उदय हो सत्त्व के ज्ञान का,
ज्ञान को बरतौ सुमुक्ति-मुक्तता, ऐश्वर्य है ध्यान का ॥²²

इस प्रकार सारे प्रयत्नों को पार कर लेने पर ही 'जैन' प्रकृति से मुक्त होकर 'ब्रह्म' पर को प्राप्त करता है। इसके बाद उसे 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अनुभव वाक्यार्थ का सम्यक् ज्ञान होता है और वह इसे अपने आचरण में लाते हुए माया के आचरण से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। स्वयं तत्त्व को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

इस सब प्रपञ्च को जल नीलात्मक पाव पार कर जाता।
इच्छामय-प्रकृति से मुक्त हुआ ब्रह्म हो जाता ॥
सोडह ब्रह्मास्मिति ज्ञान क्रियामय उसे व्यक्त कि होता।
तब आकर माया के प्रलेप को पूर्णतः शीत ॥²³

उपनिषदों में आत्मा और शरीर का स्वयं और स्वयं के रूप में सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। कठोपनिषद् में कहा गया है-

आत्मानं स्विनं विद्धि शरीरं स्वयमेव तु।
बुद्धिं तु शारदा विद्धि यतः प्रपद्यन्ते च ॥²⁴
अर्थात् आत्मा, स्वयं-स्वयं का स्वामी है, शरीर स्वयं है, बुद्धि शारदा है तथा मन ही जगाम है

चित्त कवि ने इस रूपक को अपने काव्य में उतारते हुए कहा है कि जीवात्मा ज्यों स्वयं का मायावत् रूप ही स्वयं है। इस स्वयं को चलावे जाने का ध्यान यह संसार है तथा वहीं मार्ग भी है। अतः निश्चिन्त स्वयं का जगना-जाना देखते हुए स्वयं चले जाने पर शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनके अभाव नहीं जाता है।

स्वयं जीवात्मा का क्षणिक तनु ही एक स्वयं है,
उत्तौ का जो सञ्चालन-विषय, संसार-पथ है।
तभी आते-जाते बहुविध स्वयं को निरक्षिण,
माया है सत्त्वा का तनु-स्वयं, न आत्मा परक्षिण ॥²⁵

आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए कवि कहता है-
परतया-विरवात्मा तमय-मय है, सार यह है,
अमरतो है आत्मा, क्षणिक तनु, निर्वार यह है ॥²⁶

जगतोक्त 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (गीता, २.२७) की उद्घोषणा करते हुए कवि कहता है-
धर्मो को है जगना, अमर कर जाना स्वयंभ को,
न किंचित् ने जगना, न रखकर जाना अमर को, ॥²⁷

वस्तुतः आत्मा की विकृति, जीवन्त है और परमा, प्रकृति है।
देशी का जीवन्त विकृति, मरत्य प्रकृति, यह सार।
दुःख व्यो, सुकृति नरेञ्ज का आत्मा विगत-विकार ॥²⁸

धर्मासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि मुक्ताति नरोऽपरार्णि' (गीता-२.२२) की उदाह कवि को निम्नलिखित पंक्तियों पर परिलक्षित होती है -
स्वाभाविक है जीर्ण वस्तु का वीच्य ! अन्त में जगना,
हो तन नृजन्, तल्प, पुरातन पूरु दसका क्षय पाना।
तनुव जोड़कर तनु का जगना, भूष संयोग भला है,
स्वयंभूत गुण का कीर्ति-काय यह कैसा अमर रहा है ॥²⁹

कवि का सम्पूर्ण दर्शन उसकी भक्ति में निहित है। उसके अनुसार श्रेष्ठ कवि का ध्यान योगों के समान एकाग्र होता है। उसी से उत्तम कविता का प्रादुर्भाव होता है। उत्तम रचना वही है, जो ईश्वर के निमित्त बनाई गई हो, जिस प्रकार उत्तम सन्ततिरूपी कल देने वाली स्त्री वही हो सकती है, जिसका उपयोग अन्धों सन्तान-प्राप्ति-हेतु किया गया हो। वह कहता है-

योगी का सा सुकवि जन्म का ध्यान एकाग्र होता,
योगी जैसे पर वह तभी पुण्य-सद्बोधन होता।
जो भव्या हो भणिति उसकी ईश-हेतु-प्रयुक्ता,
जैसे स्त्री हो प्रवर फसला सु-प्रजा-हेतु पुक्ता ॥³⁰

'नित्यकवि' भगवान् की सायुज्य भक्ति के अभिलाषुक हैं, वे सदा उनके साम, उनके चरणों में रहना चाहते हैं-

कृपया मुझे रखें प्रभो ! स्वकीय संभ मे,
पादरविन्द में रखें, रद्द उभय मे।
सो हूँ खेच ! नित्य दास हो प्रभोद मे,
दरसीय बाल वी दया, रखें स्वबोध मे ॥³¹

कवि नित्यानन्द शारंगों श्रीरामोपासक हैं। वे राम को स्थापकाय ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं-

दीपे नील अरुष श्री व्यापक व्यो भागवत ।
निल आरकाशित, तथा राम ब्रह्म स्वरूपकाय ॥^{१०}
भारतीय दर्शन समन्वयवादी है। सारे मतेों का लक्ष्य एक ही है। उसी परब्रह्म को तोय अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं। कवि की समन्वयवादिता द्रष्टव्य है-

भव भागर की नाव के राम तुम्हो मन्साह ।
भव-वेद-कारण कई कहते हैं बन्साह ॥
कई बुद्ध, फिर बिन कई, कोई शीशु मसीह ।
कहें कई कुछ, हो तुम्हो एक अनादि सिरिह ॥
परब्रह्म के लक्ष्य पर ही कुछ श्री शृणु नाम ।
व्यो कुछ श्री ज्ञानि बर्ष को, तुम्हें सुजाता राम ॥
किसी श्री घाट के टाप करले प्रवेश प्यारा,
नह हो मिलेना सरा, उसका न भाव है ।
अन्तर-अथाह नह, यदि कहीं याद पावे-
मायो पाधि-टाप पद्म, हंस चक्र, धाम है ॥^{११}

शैव-वैष्णव द्वादिक के विचार भी व्यर्थ हैं। सारे देव एक ही तत्त्व हैं, उन्हें अनेक नामों से पुकारा गया है। 'एकं सद् विष्णु बहुधा वदन्ति' (अथर्व, १.१६४.४६) की इस उदात्त भावना को कवि ने अपने हृदय में संज्ञाया है। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक अवतार में एक ही तत्त्व 'राम' पुकार होता है। कवि कहता है-

ब्रह्म तत्त्व भूतिमान शैव-श्रेय भूतिमान,
ज्ञान-ज्ञान स्फूर्तिमान यही नव राम है,
यही विष्णु यही विष्णु यही विधि यही शम्भु
प्रभुओं के प्रभु विष्णु राम भव-भाग है ।
भक्त्य, कूर्म, कौल और वासन, नृसिंह आदि,
समय वसन्त आदि इन्ही के सुत्तम हैं,
सारी यह पूज-धाम धाम-धाम यही धाम
लोक-धाम धर्मधाम राम भक्तिधाम है ॥^{१२}

इस प्रकार 'रामकथा-कलरत्ना' महाकाव्य का दार्शनिक दृष्टि से अनुशीलन करने पर हमें यह आत होता है कि महाकवि नित्यानन्द शारंगों की दृष्टि में सभी दर्शन एक समान हैं। विद्वानों का भी अनुशीलन और पालन करने पर परमलक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। किसी में कोई भेद नहीं है तथा ब्रह्म अत्रष्ट है, अविचल है, अविनाशी है। इन सभी दार्शनिक वितानों के मध्य श्री कवि की रामभक्ति अपना सौख्य विकीर्ण करता रहता है। यह अपना हार्द महाकाव्य के अन्तिम पद्य में इस प्रकार अभिव्यक्त करता है-

हे भिरो ! मूष बन्द हो न, उसमें रामायन-रचन्द हो,
प्यले में गुलकन्द हो भरिख व्यो वा व्यो, कलारकन्द हो ।
वा जैसे कमन्द हो कामन में, वा व्योम में चन्द हो,
आत्मा निर्धन जन्द हो, हृदय में भी निया आनन्द हो ॥^{१३}

१. रामकथा-कलरत्ना, अमर-निवेशन, पृ. ३०-३१।
२. यही, पृष्ठ २३
३. यही, मङ्गलदीर्घावली-८, पृष्ठ ३
४. स्कन्धावलि, १. २. २३ एवं मङ्गलदीर्घावलि, १. २. ३
५. रामकथा-कलरत्ना, मङ्गल-दीर्घावली-९, पृष्ठ २
६. श्रीमद्भगवद्गीता, २. ३८
७. रामकथा-कलरत्ना, मङ्गल-दीर्घावली-१०, पृष्ठ ३
८. ५: अथवाभिप्रायान्निश्चयानां तदुपपत्तिके ही। सा. का. १
९. रामकथा-कलरत्ना, १. ४४ पृष्ठ १५, एवं ही पाठोक्त्यों में 'भित्त' का अर्थ 'आदि कारण निकलना' किया गया है।
१०. (क) मूलग्रन्थीपरिकृतिर्ब्रह्मतावाः प्रकृतिभिरुत्तः सत्त्वा । शोभात्मसु विकारी न युक्तं निर्गुनिकृतिः पृष्ठः ॥
११. (ख) प्रज्ञानोद्भूतं महतीं ब्रह्मरूपं तदुपपत्त्यवस्थापनव्यतिथिं स्वर्गप्राप्तिं तन्मायेभ्यः पूष इति पद्यविरचितस्य भा. शीघ्रसूत्र, १. ११
१२. रामकथा-कलरत्ना, १. २. ३१-३६, पृष्ठ २५५
१३. यही, १. ३०-३६, पृष्ठ २५६
१४. (क) उदा शृङ्गः स्वकीयस्वरक्षणम्, पद्यप्रलोकनम्-१. ३
१५. (ख) पूषार्णवृत्तवर्षा गुणान् प्रतिपश्यः केनान् स्वस्वप्रतिभा वा विनिश्चयेति। यही, ४. ३३
१६. रामकथा-कलरत्ना, १. ७. ५६, पृष्ठ २२४
१७. निरुत्पत्तयोऽनुप्रासः । वकीभाषा, अनुप्रास-प्रकरण
१८. रामकथा-कलरत्ना, १. १. १-३, पृष्ठ १२५
१९. यही, १. ७. ५६, पृष्ठ २२३
२०. यही, १. ७. ५६-५९, पृष्ठ २२४
२१. यही, १. २१, पृष्ठ २५७
२२. यही, ४. ३५, पृष्ठ ४६
२३. यही, ७. ६२-६३, पृष्ठ ८२
२४. यही, १६. ३३, पृष्ठ १६५
२५. यही, ११. १४, पृष्ठ १३१
२६. ब्रह्मणः यही, पद्य-विषयानि
२७. भाषा: कौण्डिन्याय लोको मरुसोही च मलयः । अरु, संन्यून-द्विती कोण, पृष्ठ १०४४
२८. रामकथा-कलरत्ना, १. ६. ८९, पृष्ठ २१३
२९. यही, १०. ५७-५८, पृष्ठ २२४
३०. ब्रह्मदीर्घावलि, १. ३. ३
३१. रामकथा-कलरत्ना, १. ८. ४६, पृष्ठ २४२
३२. यही, १. ८. ५१, पृष्ठ २४२
३३. यही, १. ८. ५६, पृष्ठ २४२
३४. यही, १७. ७७, पृष्ठ २२६
३५. यही, १६. ८४, पृष्ठ २४३
३६. यही, निरुत्पत्तयानां, पृष्ठ ३४
३७. यही, १६. ३४, पृष्ठ २००
३८. यही, १६. ३०-३२, ३६, पृष्ठ २००
३९. यही, १. ८. ३९, पृष्ठ २४२ पद्य में अनेक बार 'गण' 'धाम' शब्द के अर्थ-धाम-धाम-स्थान-स्थान, धाम = तत्र, लोकस्थान=लोकस्थान, धर्मधाम = धर्मधर्म
४०. यही, २. ८. २८, पृष्ठ ४१९